



ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)

3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-2.25

Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025

Page No.- 361-366

©2025 Gyanvividha

<https://journal.gyanvividha.com>

डॉ. गुलाब सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार.

Corresponding Author :

डॉ. गुलाब सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार.

पतंजलिप्रोक्त यम का वैदिक आधार

शोधसार- प्रस्तुत शोध-पत्र महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित 'यम' नामक योगांग के स्वरूप और उसके वैदिक आधार पर केंद्रित है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में योग के आठ अंग बताए हैं, जिनमें 'यम' पहला अंग है। 'यम' का अर्थ है उन निषेधों का पालन करना जो हमें अनुचित कार्यों से रोकते हैं और हमारे चित्त को नियंत्रित करते हैं। पतंजलि ने पांच यमों का उल्लेख किया है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। चूंकि योग दर्शन एक वैदिक दर्शन है, अतः यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि कहीं न कहीं योग दर्शन के सिद्धान्तों के बीज वेदों में वर्तमान होने चाहिये। इसी जिज्ञासा के शमन हेतु प्रस्तुत शोधालेख में पतंजलिप्रोक्त यम के संदर्भ वेदों में खोजने का प्रयास किया गया है। वेदों में यमों के महत्व को दर्शाने वाले अनेक मंत्र और सूक्त दिखलाई पड़ते हैं तथा इनके पालन से होने वाले लाभ इत्यादि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

कूटशब्द- यम, योग, वैदिक योग, वेद, योगसूत्र, योग दर्शन, पतंजलि।

भारतीय दार्शनिक साहित्य में सर्वप्रथम एवं सर्वोच्च स्थान वेदों को प्राप्त है। वेदों को समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत माना गया है। ऐसा माना जाता है कि लोक में जितनी भी विद्याएं प्रचलित हैं उन सभी के मूल सूत्र वेदों में बीजरूप में विद्यमान हैं। अतः लोक में प्रचलित योगविद्या के मूल सूत्र भी वेदों में वर्तमान होने चाहिए। योगविषयक सम्पूर्ण साहित्य में महर्षि पतंजलि द्वारा रचित ग्रन्थ 'योगसूत्र' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ में योग का जैसा सुव्यवस्थित विवेचन प्राप्त होता है वैसा विवेचन इससे पूर्व किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। महर्षि पतंजलि ने 'योगसूत्र' में योग के आठ अंग अथवा सोपान बताये हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, एवं समाधि।

योगसाधक इनमे से क्रमशः एक-एक सोपान पर चढ़ते हुए समाधि अथवा आत्मसाक्षात्कार की अवस्था को प्राप्त कर सकता है जोकि योगसाधना का चरम लक्ष्य है। योग के उपर्युक्त आठ अंगों में प्रथम अंग 'यम' है। प्रस्तुत शोधालेख में केवल 'यम' के ऊपर ही विचार को केन्द्रित रखते हुए यम के वैदिक आधार का अन्वेषण करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु यहाँ सर्वप्रथम यम के स्वरूप को भलिभाँति समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है, तत्पश्चात् ही यम के वैदिक संदर्भों का अन्वेषण समीचीन होगा-

यम का स्वरूप:-

“उपरम अर्थ वाली 'यम' धातु से अप्रत्ययान्त 'यमः' शब्द का अर्थ है 'उपरमण का साधन' अर्थात् 'जो हिंसादि निषिद्ध कर्मों से हटाने वाले हैं; वे यम कहलाते हैं।² यम धातु का एक अर्थ नियमन भी है, जिसके अनुसार 'यम्यते, नियम्यते चित्तम अनेन इति यमः।' ऐसा निर्वचन होगा, अर्थात् जिनसे चित्त का नियन्त्रण किया जाए उन्हें यम कहते हैं।³ महर्षि पतंजलि ने पाँच यमों का उल्लेख योगसूत्र में किया है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।⁴ इन पाँच यमों का स्वरूप विवेचन निम्न प्रकार है-

1.अहिंसा:-“मन, वाणी तथा कर्म से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना। न केवल कष्ट पहुँचाना, अपितु उसकी भावना भी चित्त में न आनी चाहिये। किसी के प्रति द्रोह, ईर्ष्या, असूया आदि की भावना का चित्त में उभरना हिंसा में परिणमित होता है। चित्त में इनका उभार कभी किसी प्रकार न होना चाहिये।⁵”अहिंसा का आचरण परिपक्व हो जाने पर उस योगी का सब प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले और उसका आचरण करने वाले का भी अपने आचरण के अनुसार अन्य प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है।⁶

2. सत्य:- सत्य के विषय में व्यासभाष्य में कहा गया है कि,-“ जो पदार्थ जैसा हो उसके सम्बन्ध में वैसी ही

वाणी और वैसा ही मन में होना 'सत्य' है। जिस प्रकार देखा (प्रत्यक्ष किया), जिस प्रकार अनुमान से जाना और जिस प्रकार सुना उसी प्रकार वाणी और मन का होना सत्य है।⁷

“मन, वाणी और शरीर से सत्य आचरण के परिपक्व हो जाने पर योगी का कर्म उत्तम फल वाला हो जाता है और उसके आचरण का प्रभाव अन्य प्राणियों पर भी यथायोग्य पड़ता है।⁸

3. अस्तेय:-“स्तेय चोरी को कहते हैं उसका सर्वात्मना त्याग करना 'अस्तेय' है। जिस द्रव्य पर किसी दूसरे का अधिकार है, उसको अवैधानिकरूप से कभी ग्रहण न करे; न ग्रहण करने की इच्छा करे। अन्य के द्रव्य के प्रति लालसा भी नहीं होनी चाहिये। लालसा उभरने पर आगे अन्य दोष-विकार उत्पन्न होकर स्तेय के रूप को धारण कर जाते हैं। इस सबका पूर्ण त्याग अस्तेय है।⁹

“जब योगी मन-वाणी-शरीर से अच्छे प्रकार से चोरी का परित्याग कर देता है तब सब उत्तम पदार्थों की प्राप्ति होती है। अर्थात् उत्तम पुरुषार्थ के अनुकूल फल-प्राप्ति, अन्यो से सहायता तथा ईश्वर से ज्ञान, बल और सुख की प्राप्ति होती है।¹⁰

4. ब्रह्मचर्य:-“कामवासनाओं से सर्वात्मना बचते हुए प्रयत्नपूर्वक वीर्य की रक्षा करना। जितेन्द्रिय रहना, इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति को न उभरने देना, ब्रह्मचर्य है। पूर्णरूप में वीर्यरक्षा के साथ अन्य इन्द्रियों को भी विषयों में निर्बाध प्रवृत्त होने से रोकना ब्रह्मचर्य की सीमा में आता है।¹¹ “जब योगी मन, वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ बना लेता है तब बौद्धिक और शारीरिक बल की प्राप्ति होती है। उससे वह अपनी तथा अन्यो की रक्षा करने में, विद्या प्राप्ति तथा विद्यादान में समर्थ हो जाता है।¹²

5. अपरिग्रह:-“विषयों में उपार्जन, रक्षण, क्षय, सङ्ग, हिंसा दोष देखकर विषयभोग की दृष्टि से उनका संग्रह न करना, अपरिग्रह है। इसको इस प्रकार से भी कह

सकते हैं कि हानिकारक, अनावश्यक वस्तु और अभिमानादि हानिकारक, अनावश्यक अशुभ विचारों को त्याग देना, अपरिग्रह है। जो-जो वस्तु और विचार ईश्वर प्राप्ति में साधन हैं उनका ग्रहण करना अपरिग्रह है।¹³ “अपरिग्रह की स्थिरता होने पर भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान जन्म से सम्बन्धित जिज्ञासा और आनुमानिक ज्ञान हो जाता है।”¹⁴

यह संक्षेप में महर्षि पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट यम का स्वरूप हुआ। अब यहाँ यम के वैदिक आधार का विवेचन किया जा रहा है-

यम का वैदिक आधार:-

उपर्युक्त पाँचों यमों का विवेचन वेदों में किसी एक मन्त्र या सूक्त में व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से तो प्राप्त नहीं होता, परन्तु विभिन्न प्रकरणों एवं प्रसंगों के अनुसार अलग-अलग स्थलों पर इन सभी का विवेचन प्राप्त होता है। वैदिक परिप्रेक्ष्य में पाँचों यमों का विवेचन निम्न प्रकार है-

(क) अहिंसा:- वेदों में अनेक स्थलों पर अहिंसा के सम्बन्ध में उपदेश प्राप्त होते हैं। हिंसात्मक वृत्तियाँ योगसाधक के आध्यात्मिक मार्ग में बाधा उपस्थित कर परमात्मप्राप्ति में बाधक बनती हैं। इसलिए ऋग्वेद में उपदेश दिया गया है कि, “सोमस्वरूप परमेश्वर को चाहने वाले साधकों! तुम किसी की हिंसा मत करो।”¹⁵ इसका कारण बताते हुए वेद में कहा है कि, “हिंसक वृत्तिवाला व्यक्ति मोक्षरूपी अनुपम सम्पदा को कदापि नहीं पा सकता।”¹⁶ चूँकि मोक्ष मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है, अतएव मोक्षाभिलाषी साधक को हिंसात्मक व्यवहार से परे रहना चाहिये। एक अन्य स्थल पर वेद में कहा गया है कि “जो अन्याय-अनीति से स्वार्थवश किसी की हिंसा नहीं करते, वही धर्मात्मा, शक्तिशाली होकर निर्भयता से विजय पाते हैं।”¹⁷ इसीलिए उपदेश किया गया है कि, “योगाभिलाषी अहिंसा का पालन करें, अन्य राजपुरुष आदि उनकी रक्षा करते हुए अहिंसावृत्ति का

आचरण करें।”¹⁸ प्रायः हिंसा के मूल में द्वेष की भावना वर्तमान रहती है, इसलिए वेद में प्रार्थना की गई है कि, “हे प्रभो! आप सम्पूर्ण द्वेषयुक्त कर्मों को हमसे पृथक् कर दीजिये।”¹⁹ “तथा वेद का उपदेश भी है कि, “अद्वेषी ही परमात्मप्रसाद को पा सकता है।”²⁰ इसीलिए साधक प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! जैसे विद्वान लोग हिंसारहित मित्र के घर जाते रहते हैं, उन्हीं का अनुसरण मैं करूँ।”²¹

(ख) सत्य :- अहिंसा के समान सत्य नामक यम का विवेचन भी वेद में व्यापक रूप से प्राप्त होता है। सत्य के सम्बन्ध में वेद में कहा गया है कि, “जैसा ज्ञान आत्मा में वर्तमान है, वैसा मन में तथा जैसा मन में है वैसा वाणी से कहना सत्य या यथार्थ होता है।”²² सत्यभाषण का उपदेश करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि “मानव तू सदैव सत्य बोल, प्रिय बोल, अप्रिय सत्य मत बोल, क्योंकि सत्य बोलने से भी प्रिय सत्य बोलना अधिक श्रेयस्कर है।”²³ वेद में सत्य के साथ - साथ प्रिय एवं मधुर वचनों के प्रयोग का उपदेश दिया गया है। साधक वाणी की मधुरता के लिए प्रार्थना करता है कि-“मेरी जिह्वा के अग्रभाग पर, जिह्वामूल में तथा मन-बुद्धि में मधुरता विराजमान हो। मेरा निकलना (बाहर जाना) तथा मेरा आना मधुरता से भरा हो। मैं वाणी से मधु के समान मधुर एवं प्रिय सत्य बोलूँ तथा मेरे जीवन में मधुरता ऐसे ओतप्रोत हो जाए कि मैं मधु के समान ही हो जाऊँ।”²⁴

सत्य के महत्व को प्रदर्शित करते हुए वेद में कहा गया है कि-“जो राजा गौ अर्थात् सत्यनिष्ठ वाणी को साधारण कोमल समझकर दबाना चाहता है, वह वाणी सर्प के समान भयंकर रूप धारण कर उसके सम्पूर्ण राज्य को विनष्ट कर देती है, अतः अज्ञानी राजा को उपदेश दिया गया है कि सत्यवाणी नष्ट करने योग्य नहीं है, क्योंकि यह राष्ट्र को शुद्ध कर चिरस्थायी करने में सहायक है।”²⁵ सत्याचरण का महत्व इससे भी पता चलता है कि उपनिषद् में सत्य को

परमात्मप्राप्ति का साधन माना गया है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि "परमात्मा वास्तव में सत्य से, यथार्थ ज्ञान से, तप से तथा ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जाता है।"²⁶ इसीलिए वेद में सर्वत्र सत्य की प्रशंसा एवं असत्य की निन्दा की गयी है। यथा - "सत्य की सोम अर्थात् परमात्मा रक्षा करता है और असत्य का विनाश कर देता है।"²⁷ एवं "मिथ्यावादी को वरुण के पाश बन्धन में डालकर नष्ट कर देते हैं एवं सत्यवादी उन पाशों से मुक्त रहता है।"²⁸

(ग) अस्तेय:- बिना आज्ञा किसी के पदार्थ का हरण कर उसे अपने उपयोग के लिए ले लेना स्तेय अर्थात् चोरी माना जाता है एवं मन, वचन और कर्म से इस प्रवृत्ति का त्याग अस्तेय कहा जाता है। अस्तेय का पालन एक प्रकार अहिंसा पालन में ही सन्निविष्ट है क्योंकि किसी के द्रव्य को चुरा लेने से उसे कष्ट होना स्वाभाविक है और किसी को कष्ट देना ही हिंसा कहलाता है। वेदों में सर्वत्र अस्तेय पालन का विधान एवं चौरकर्म की निन्दा की गई है।

यजुर्वेद में छल से परपदार्थों का हरण करने वालों तथा चौरकर्म से आजीविका चलाने वालों को यथायोग्य वज्र प्रहार तथा दण्ड देने का आदेश दिया गया है।²⁹ चौरकर्म को नीचकर्म बताकर निन्दा की गई है तथा अपराधी को कारागार में डालने एवं शारीरिक दण्ड देने का विधान किया गया है।³⁰ वेद में मनुष्य के लिए पालन करने योग्य सात मर्यादाओं का विधान किया गया है और कहा गया है कि जो इन मर्यादाओं का पालन नहीं करता वह जीवन में सब प्रकार से पतित हो जाता है।³¹ ये सात मर्यादाएं कौन सी हैं? इसका विशेष विवरण निरुक्तशास्त्र में मिलता है- (1) स्तेयकर्म (चोरी) (2) परस्त्रीगमन (3) वेद्विद विद्वान् की हत्या (4) गर्भ-हत्या (5) सुरापान (6) दुष्कर्म का पुनः पुनः सेवन, तथा (7) पापकर्म करके झूठ बोलना।³² इन सात मर्यादाओं में से किसी एक को भी जो मनुष्य तोड़ता है वह पापी माना जाता है।

उपर्युक्त सप्तमर्यादाओं में स्तेय को सर्वप्रथम स्थान पर रखा गया है क्योंकि निरुक्त में स्तेय को पापों का समूह कहा गया है।³³ वेद में चोरी करने वाले मनुष्य के सुधार की बात भी कही गई है। ऋग्वेद में विद्वानों को निर्देश दिया गया है कि वे स्वयं विद्या का अर्जन करके, जो विद्या और धन की चोरी करने वाले मनुष्य हैं उनको सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लाएँ।³⁴

(घ) ब्रह्मचर्य:- 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ है- ब्रह्म अर्थात् परमात्मा तथा वेद में विचरण करना एवं वीर्य का रक्षण अर्थात् उसे अपने अन्दर धारण करना। अर्थात् ब्रह्म-प्राप्ति हेतु वेदाध्ययन करते हुए अष्टविध मैथुन त्यागपूर्वक व्रत धारण करना, उपस्थेन्द्रिय का संयम करना, स्त्री संयोग न करना।³⁵

वेदों में तीन प्रकार के ब्रह्मचारियों का वर्णन प्राप्त होता है। जो 24 वर्ष पर्यन्त विद्याध्ययन एवं ब्रह्मचर्य पालन करते हैं उन्हें 'वसु'³⁶ ब्रह्मचारी कहा गया है। जो 44 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन्हें रुद्र³⁷ तथा जो 48 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन्हें 'आदित्य'³⁸ ब्रह्मचारी की संज्ञा से विभूषित किया जाता है।

वेदों में ब्रह्मचर्य की महिमा का बहुत गुणगान किया गया है। यजुर्वेद में कहा है कि "जो आयु के प्रथम चरण में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे ही बल-परक्रम को प्राप्त करते हैं तथा विद्या-प्राप्ति में समर्थ होते हैं। ब्रह्मचर्य पालन से साधारण मनुष्य हो या विद्वान सभी दीर्घायु को प्राप्त कर लेते हैं। राक्षस और पिशाच लोग उसकी शक्ति का उल्लंघन नहीं कर सकते।³⁹ सामवेद में ब्रह्मचर्य को चेहरे के ओज एवं तेज का कारण बताया गया है।⁴⁰

अथर्ववेद में तो 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' नामक एक सूक्त में पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य के महत्त्व पर ही प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि-"ब्रह्मचारी सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, वायु तथा जलों में विद्युतरूप दीप्ति को जानकर उन्हें अपने में धारण करने की शक्ति प्राप्त

करता है। अर्थात् भौतिक देवों से भी ब्रह्मचर्य के धारण करने की शिक्षा लेता है। ब्रह्मचारी ही विद्योपार्जन करके उसे आत्मीय जनों में विकसित करता है।⁴¹ राजा ब्रह्मचर्य रूपी बल से ही राष्ट्र की रक्षा करता है।⁴² ब्रह्मचर्य के कारण ही अश्व घास को खाता है।⁴³ अर्थात् भोजन का पाचन भी ब्रह्मचर्य रूपी अग्नि से ही होता है। यहाँ तक कि ब्रह्मचर्यरूपी तप से देव अथवा योगी लोग मृत्यु को भी जीत लेते हैं।⁴⁴ अतएव वेदानुसार मानव जीवन में ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य है।

(ड) अपरिग्रह:- भोग-साधनों अथवा वस्तुओं का अनावश्यक रूप से संग्रह करना 'परिग्रह' कहलाता है। इसके विपरीत अपनी इन्द्रियों एवं इच्छाओं पर नियन्त्रण रखते हुए भोग्य सामग्री का यथासम्भव कम से कम संचय करना अपरिग्रह माना जाता है। योगसूत्रभाष्यकार व्यास ने विषयों के संग्रह में अर्जन, रक्षण, क्षय, संग एवं हिंसा आदि दोषों को स्वीकार करते हुए अपरिग्रह के पालन करने का उपदेश दिया है।⁴⁵

अपरिग्रह का पालन तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी इन्द्रियाँ एवं मन संयमित हो तथा विषयों से पराङ्गमुख हो जावें। इसलिए वेद में प्रार्थना की गई है कि, "दश इन्द्रियाँ तथा मन मेरे विस्तीर्ण पवित्र हृदयासन पर बैठें। अर्थात् हृदयस्थ आत्मचेतना के अधीन रहें। ये चपलता न करते हुए, स्थिरता से परमात्मा को प्राप्त करने में सहायक हो और अपने-अपने समीप से दुर्व्यसनों को दूर कर दें।"⁴⁶

अपरिग्रह का यह अर्थ कतई नहीं है कि वेद मनुष्य को धनोपार्जन न करने का उपदेश देता है अथवा व्यक्ति को पुरुषार्थहीन बनने की सलाह देता है। अपितु वेद तो यह कहता है कि - हे मानव! तू सैकड़ों धार्मिक साधनों से अन्न-धन का संग्रह कर, निकम्मा, आलसी, पुरुषार्थ-हीन होकर मत बैठ।⁴⁷ परन्तु साथ ही वेद यह भी कहता है कि इस उपार्जित धन को केवल अपनी ही स्वार्थ सिद्धि में मत लगा।

विचारपूर्वक देख कि यह धन किसका है और फिर त्यागपूर्वक इसका उपभोग कर।⁴⁸ वेद जहाँ सैकड़ों प्रकार से धन संग्रह का उपदेश देता है वही उसे जनकल्याणार्थ हजारों प्रकार से दान करने का भी उपदेश देता है।⁴⁹ वेद में स्पष्ट कहा गया है कि- मूर्ख (अदाता) अन्न-धन को व्यर्थ ही संकलित करता है यह सत्य है कि जो अपने अन्न धन से विद्वानों का पोषण तथा मित्र की सहायता नहीं करता, उसकी तो ये मृत्यु ही समझो, क्योंकि अकेला खाने वाला पाप खाता है।⁵⁰ इस प्रकार वेद मनुष्य को धन की अतिलालसा पर अंकुश लगाते हुए समाज के कल्याणार्थ धनोपार्जन का उपदेश देता है। जिससे व्यक्ति परिग्रहवृत्ति का त्याग करके अपरिग्रह के पालन में तत्पर हो सके।

उपसंहार:-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वेदों में उक्त पाँचों यमों से सम्बन्धित विचार पर्याप्त रूप से विद्यमान है। जिससे स्पष्ट होता है कि महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित महत्वपूर्ण योगांग 'यम' को वेदों का सुदृढ़ आधार प्राप्त है। केवल यम ही नहीं अपितु पतंजलिप्रोक्त सम्पूर्ण योगशास्त्र के बीज वेदों में वर्तमान हैं, जिनको एक सूत्र में पिरोते हुए महर्षि पतंजलि ने एक सुव्यवस्थित योग पद्धति अथवा योगशास्त्र के रूप में विकसित किया। 'महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगशास्त्र का वैदिक आधार'- यह अलग से एक सम्पूर्ण शोधग्रन्थ का विषय हो सकता है। परन्तु प्रस्तुत शोधलेख की अपनी सीमा है जिसके अन्दर रहते हुए इसमें केवल यम नामक योगांग के वैदिक आधार का विवेचन किया गया है। इस विवेचन के आलोक में कहा जा सकता है कि पतंजलिप्रोक्त 'यम' पूर्णरूप से वेदों पर आधृत है। इससे भारतीय दर्शनिकों की इस धारणा को भी बल मिलता है कि वेदों से ही सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ है जैसा कि महर्षि दयानन्द ने भी आर्य

समाज के तीसरे नियम में वेदों को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना है।

सन्दर्भ – सूची :

1. योगसूत्र-2/29
2. योगसुधा-2/30
3. वेदों में योगविद्या, डॉ० स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, पृ० 220
4. योगसूत्र-2/30
5. योगदर्शनम्, आचार्य उदयवीर शास्त्री, पृ० 134
6. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 186
7. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 174
8. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 188
9. योगदर्शनम्, आचार्य उदयवीर शास्त्री, पृ० 135
10. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 189
11. योगदर्शनम्, आचार्य उदयवीर शास्त्री, पृ० 136
12. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 189
13. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 176
14. योगदर्शनम्, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, पृ० 191
15. ऋग्वेद-7/32/9
16. सामवेद 868, ऋग्वेद-7/32/21
17. ऋग्वेद-7/32/9
18. यजुर्वेद-16/3
19. ऋग्वेद- 4/1/4
20. ऋग्वेद-1/24/4
21. ऋग्वेद-5/64/3
22. ऋग्वेद-5/44/6
23. मनुस्मृति - 4/138
24. अथर्ववेद - 1/34/2-3
25. अथर्ववेद-5/18/19
26. मुण्डकोपनिषद् - 3/1/5
27. ऋग्वेद-7/104/12
28. अथर्ववेद-4/16/6
29. यजुर्वेद-16/21
30. यजुर्वेद- 30/5
31. ऋग्वेद-10/5/6
32. निरुक्त- 6/27
33. निरुक्त-3/19
34. ऋग्वेद-6/51/13
35. वेदों में योगविद्या, स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती पृ० 247
36. ऋग्वेद (दयानन्द भाष्य) - 1/163/2
37. यजुर्वेद - 4/20, 6/32
38. यजुर्वेद - 9/34, 4/21
39. यजुर्वेद - 34/41, 34/42
40. सामवेद-395
41. अथर्ववेद-11/5/13, 11/5/15
42. अथर्ववेद-11/5/16
43. अथर्ववेद-11/5/18
44. अथर्ववेद-11/5/19
45. योगसूत्र व्यासभाष्य-2/30
46. ऋग्वेद-8/28/1
47. अथर्ववेद- 3/24/5
48. यजुर्वेद- 40/1
49. अथर्ववेद-3/24/5
50. ऋग्वेद-10/117/1

•